

आर्य्य-धर्म्म ग्रन्थमाला-चतुर्थ गुच्छक ।

ओ३म्

आचाराऽनाचार
और
छूत छात ।



रचयिता

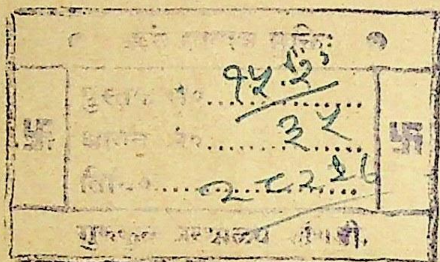
मुन्शीराम जिज्ञासु

दयानन्दाब्द ३३

संवत् १९७३ विक्रमी

सन् १९१६ ई०

प्रथमवार
२०००



आचारा ल्लभते ह्यायु राचारादी प्सिताः प्रजाः ।
आचारा द्धनमऽक्षय्यमाऽऽचारो हन्त्य लक्षणम् ॥

"आचार से आयु, इच्छित सन्तति तथा अक्षय धन प्राप्त होता है और आचार अशुभ लक्षण को नष्ट करता है ।"

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुर्भागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरे व च ॥

दुष्ट आचरण करने वाला पुरुष लोक में निंदित; दुःख ...गी, निरन्तर रोगी रहता तथा अल्पायु भी होता है ।"

मनु०



॥ ओ३म् ॥

आचाराऽनाचार और छूतछात।

प्रस्तावना

भक्ष्याऽभक्ष्य का विषय यद्यपि आचाराऽनाचार के अन्तर्गत ही है, यहां तक कि सदाचार के विस्तृत खुले मैदान में वह एक कोने के अन्दर पड़ा रहता है, किंतु भारतवर्ष के पौराणिकों ने खाने पीने के भी एक अंश को ही धर्म्म की कसौटी समझ कर उसे इतना व्यापक बना दिया है कि छूतछात रूपी मगरमच्छ के बड़े पेट ने यम, नियम, साधन, सदाचार सब कुछ अपने अन्दर रखकर मुंह बन्द कर लिया है। जब मैं अभी लड़का ही था और अपने पिता जी के साथ संयुक्त प्रान्त में रहता था तो पंजाबी रसोइये के बीमार होने पर देवीदीन कनौजिया हमारा भोजन बनाने लगा। उन दिनों दैवयोग से हमारे अनपढ़ कुल पुरोहित भी पंजाब से आए हुए थे। कनौजिया मिसिर हम लोगों को चौके से बाहिर भोजन

खिलाने के पश्चात्, स्वयम् गर्मी सुखाकर भोजन से पहिले आराम करने निकले। पुरोहित जी भोजन कर चुके थे, अब चिलम के लिये आग लेने चौके में घुस गए। यह चूल्हे से आग लेही रहे थे कि देवीदीन मिसिर ने शोर मचादिया " भ्रष्ट कै दिहिन, अरे राम! राम!! " और लगा वाही तबाही बकने। इतना कोलाहल मचा कि पिता जी भी पहुंच गए। पूछने पर पुरोहित जी ने कहा कि चिलम के लिये आग लेने अन्दर गया था कि इस " भइय्यन" नें शोर मचा दिया। पिता जी ने देवीदीन मिसिर से कहा-" अरे यह भी तो ब्राह्मण है। आग ले ली तो क्या ग़ज़ब हो गया, तेरी रोटी तो किसी ने नहीं छुई। " देवीदीन के शिरपर इस समय भैरव देवता सवार थे; वह किसीकी कब सुनता था : क्रोध में बोला — " अरे सरकार! हम आपन धर्म कबहूं नाहिन् छोड़ा। अरे! झूठ बोला, जुआ खेला, गांजा चरस पिया, दारू चढ़ावा, रिसवत लिहा, चोरी दगाबाजी किहा, कौन फन्द फरेब बाटै जौन हम नाहीं किहा; पर सरकार! आपन धरम कबहूं नाहीं छोड़ा। " इसके पश्चात् वर्षों व्यतीत हो गए; मैं आर्य्यसमाज का सेवक बना। एक आर्य्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर एक आर्यो-

देशक भी आए हुये थे, जिन्हें लोग ' आचारी जी " कह कर पुकारते थे। आचारी जी स्वयंपाकी थे; दोपहर को बड़ी स्वादिष्ट खिचड़ी बना, अभी आधपाव घी का बघार लगा कर थाली में रक्खी ही थी कि पण्डित लेखराम जी ने कुछ बात करते हुए आचारी जी के कन्धे पर हाथ रख दिया। बस फिर क्या था, खिचड़ी तो दो पंजाबियों ने खाली जिन्हें भोजन किये दो घंटे व्यतीत हो चुके थे और आचारी जी को केवल दूध और कला-कन्द पर ही सन्तोष करना पड़ा। धन्य हो देवीदीन मिसिर ! धन्य हो पूज्यपाद आचारी जी ! आपसे दार्शनिक विद्वानों का ही काम है कि पौराणिक सदाचार से कठिन विषय का लक्षण अपने आचरण द्वारा ही स्पष्ट कर दिया।

इस समय पौराणिक समाज (आर्य्य सन्तान होने के कारण इनके लिये हिंदू शब्द का प्रयोग अनुचित समझता हूं) ने आचार के विचार से भक्ष्याऽभक्ष्य के निर्णय को भी ख़ारिज कर दिया है। एक ब्राह्मण का आचार मांस खाने और मद्य पीने से भ्रष्ट नहीं होता, किंतु यदि उसके चौके में भूल से एक फलाहारी धर्म्मात्मा जन्म के क्षत्री वा वैश्य का पैर जा पड़े तो फिर सात्विक भो-

जी होने पर भी वह आचार भ्रष्ट समझा जाता है। तब क्या संदेह है कि वेद, स्मृति तथा अन्य शास्त्रों की भी आज्ञाओं का उल्लंघन करके आर्य्य संतान ने इस समय सदाचार के अर्थ न केवल संकुचित ही कर दिए बल्कि सर्वथा बदल दिये हैं।

आर्य्य सामाजिक पुरुषों के लिये तो रास्ता बिलकुल साफ़ था, फिर यदि आत्म-निर्बलता के कारण वे भी पौराणिक गढ़े में गिरना स्वीकार करें तो कर्म्म फल से छूट कैसे सकते हैं। हमारे लिये वेद तथा शास्त्रों की सहायता से ऋषि दयानन्द ने प्रत्येक विषय पर सीधा मार्ग बतला दिया है, इसलिये सदाचार के विषय में भी उनका मत सर्व साधारण के सामने स्पष्ट करना उचित मालूम होता है।

आचार का लक्षण

अपने अपूर्व ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के दशम समुल्लास के आरंभ में ही आचार का संक्षिप्त लक्षण ऋषि ने इस प्रकार करके कि "धर्म्म युक्त कामों का आचरण, सुशीलता, सत्पुरुषों का संग और सद्विद्या के ग्रहण में रुचि आदि आचार और इनसे विपरीत अनाचार कहाता

है" और मनुस्मृति के तद्विषयक बहुत से श्लोकों को उद्धृत कर के सब का निचोड़ यह बतलाते हैं:- "जो सत्य भाषणादि का आचरण करना है वही वेद और स्मृति में कहा हुआ आचार है। माता, पिता, आचार्य्य और अतिथि की सेवा करनी देवपूजा कहाती है; और जिस २ कर्म्म से जगत् का उपकार हो वह २ कर्म्म करना और हानीकारक छोड़ देना ही मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य है। कभी नास्तिक, लम्पट, विश्वास घाती, मिथ्या-वादी, स्वार्थी, कपटी छली आदि दुष्ट मनुष्यों का संग न करे। आप्त जो सत्यवादी धर्मात्मा, परोपकार प्रिय जन हैं उनका सदा संग करने का ही नाम श्रेष्ठाचार है।"

उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट विदित होता है कि ऋषि दयानन्द सत्यभाषण परोपकारादि उत्तम कामों का सेवन आचार और इनसे विपरीत दुष्कर्मों के सेवन को अना-चार कहते हैं और यही वेद तथा तदानुकूल शास्त्रों का मूल सिद्धान्त है। तब यह बात स्वतः सिद्ध है कि यदि छूत छात के बन्धनों में जकड़े रहने से ही मनुष्य श्रेष्ठ बन सकता है तो इसे आचार कहेंगे। किन्तु यदि छूत छात से उलटी ईर्षा, द्वेष, पक्षपात, अभिमानादि की

मनुष्यों में वृद्धि हो तो उसे निस्सन्देह अनाचार कहना पड़ेगा।

भक्ष्याऽभक्ष्य का विचार

यदि उपरोक्त आचार के लक्षण रूपी कसौटी पर कसा जाय तो प्रश्न यह नहीं होता कि चौके में एक शुद्ध वस्त्र धारण किये सात्विक भोजन करने वाले बढ़ई असिस्टेन्ट सर्जन का पैर पड़ गया है वा उसके अन्दर एक बर्तन मांजने तथा बूट साफ़ करने वाले और जाड़ों में नहाने से जी चुराने वाले पहाड़ी बाम्हन का राज्य है। प्रश्न वहां यह होगा कि मांस और फल दोनों में से भक्ष्य क्या है और वेद भगवान के दर्बार से व्यवस्था मिलेगी कि फल भक्ष्य और मांस अभक्ष्य है वहां यह विवाद नहीं उठ सकेगा कि किस जानवर का मांस भक्ष्य और किसका अभक्ष्य है, वहां सुअर, गाय और बकरे में कुछ तमीज़ नहीं होगी, वहां देश, काल और समय के भेद से आचार भेद का कोई उज्र नहीं सुना जायगा वहां झटके और बिस्मल के झगड़े को भी पांव तले रौंद दिया जायगा क्योंकि "उन झटका उन बिस्मिल कीन्हा, दया दोहूं से भागी है" और अदया अनाचार है। ऋषि

दयानंद ने सखरी निखरी को धूर्तों का चलाया हुआ पाखंड बतलाकर लिखा है—" क्योंकि जिसमें घी, दूध अधिक लगे उसको खाने में स्वाद और उदर में चिकना पदार्थ अधिक जावे इस लिये यह प्रपञ्च रचा है; नहीं तो जो अग्नि और काल से पका हुआ पदार्थ पक्का और न पका हुआ कच्चा है। जो पक्का खाना और कच्चा न खाना है, यह भी सर्वत्र ठीक नहीं क्योंकि चणे आदि कच्चे भी खाये जाते हैं" इसके पश्चात् यह प्रश्न उठाकर कि "द्विज अपने हाथ से रसोई बनाकर खावे वा शूद्र के हाथ की बनाई खावे, उत्तर देते हैं कि " शूद्र के हाथ की बनाई खावे, क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण स्त्री पुरुष विद्या पढ़ाने, राज्य पालने और पशु पालन, खेती और व्यापार के काम में तत्पर रहें।" इस व्यवस्था की पुष्टि में आपस्तम्ब धर्म सूत्र का प्रमाण देते हैं:—

आर्य्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्त्तारः स्युः

इस विषय पर बड़ी सरल तथा पुष्ट युक्तिएं देकर कि, पाक कर्म्म शूद्र का ही धर्म्म है, और उससे पहिले भी यह जतलाकर कि 'जहां भोजन करें उस स्थान को धोने, लेप करने, झाड़ू लगाने, कूरा करकट दूर करने

में प्रयत्न करना ही आचार है' ऋषि दयानंद छूत छात के पक्षपातियों के विषय में स्पष्ट लिखते हैं:—

"इसी मूढ़ता से इन लोगों ने चौका लगातेर विरोध करते कराते सब स्वातन्त्र्य, आनन्द, धन, राज्य, विद्या और पुरुषार्थ पर चौका लगाकर हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं" फिर:—

"आपुस में आर्य्यों के एक भोजन होने में कोई भी दोष नहीं दीखता। जब तक एक मत, एक हानि लाभ, एक सुख दुःख परस्पर न मानें तब तक उन्नति होना बहुत कठिन है........देखो! महाभारत युद्ध में सब लोग लड़ाई में सवारियों पर खाते पीते थे। आपस की फूट से कौरव पांडव और यादवों का सत्यानाश होगया सो तो होगया परन्तु अब तक वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ा कर दुःखसागर में डुबा मारेगा"।

कैसे हृदयवेधक शब्द और कैसे करुणामय हृदय से निकले हुए हैं! उपरोक्त लेखों पर दीर्घ दृष्टि डालने से सिद्ध होता है कि ऋषि दयानन्द वर्तमान छूतछात का आचार के साथ कोई सम्बन्ध नहीं समझते थे और

ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य तीनों वर्णों के एक पंक्ति में बैठ कर खाने का समर्थन करते थे। शूद्रों के हाथ का बनाया भोजन द्विजों को ग्राह्य समझते थे और किसी को भी घृणित दृष्टि से देखने की आज्ञा नहीं देते थे। हाँ मुसलमानों की तरह एक दस्तरख़ान पर बैठ, एक ही रिकावी में हाथ डाल कर खाने के—जिसका आज कल के पढ़े लिखे पौराणिकों में प्रचार है—वह विरुद्ध थे (इस अंश में ईसाईयों का सामाजिक नियम अच्छा है कि प्रत्येक पुरुष एक ही मेज़ पर जुदे जुदे बर्तनों में भोजन करताहै, यद्यपि गिलासादि का उच्छिष्ट न मानना उनकी भी भूल है) इसी लिये यह प्रश्न उठा कर कि एक साथ खाने में कुछ दोष है वा नहीं ऋषि दयानन्द उत्तर देते हैं;—"दोष है क्योंकि एक के साथ दूसरे का स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती जैसे कुष्टी आदि के साथ खाने से अच्छे मनुष्य का भी रुधिर बिगड़ जाता है वैसे दूसरे के साथ खाने से भी कुछ बिगाड़ ही होता है, सुधार नहीं इस लिये न किसी को अपना जूठा पदार्थ दे न किसी के भोजन के बीच आप खावे ......" तब आर्यों के लिये इस अंश में आचार यह है कि द्विज एक पंक्ति में बैठ कर भोजन करें, शूद्रों के हाथ का बना

भोजन खाँय तथा अति शूद्रादि को भी प्रेम की दृष्टि से देखते हुए परस्पर के द्वेष को दूर करें।

यद्यपि आर्य्य वैदिकों को वर्णव्यवस्था गुण, कर्म, स्वभावानुसार मन्तव्य होने से यह प्रश्न और भी साफ़ होजाता है परन्तु यतः इस समय के वेदधर्मानुयायी प्रायः अपने अमल से वर्णव्यवस्था को जन्मानुसार ही मान रहे हैं इस लिये मैं ने इस स्थान में उस पर ज़ोर नहीं दिया। फिर भी यह नियम आर्य्यसमाजी तथा अनार्य्यसमाजी, आर्य्यसन्तान मात्र के लिये व्यापक नियम सिद्ध होता है। किन्तु द्विज कौन है ? इस प्रश्न का उत्तर ऋषि दयानन्द यह देते हैं कि—

'जो भक्ष्य का सेवन करता है वही द्विज'

है। तब विचारणीय यह है कि अभक्ष्य पदार्थ कौन से हैं ? ऋषि दयानन्द लिखते हैं:—

"भक्ष्याऽभक्ष्य दो प्रकार का होता है; एक धर्मशास्त्रोक्त दूसरा वैद्यक शास्त्रोक्त, जैसे धर्मशास्त्र में— अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्य प्रभवाणि च —द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य को मलीन विष्ठा मूत्रादि के संसर्ग से उत्पन्न हुए शाक फल मूलादि न खाना।

वर्जयेन्मधुमाँसं च-जैसे अनेक प्रकार के मद्य गाँजा, भांग, अफ़ीम आदि। बुद्धिं लुम्पतियद्द्रव्यं मदकारि तदुच्यते-जो २ बुद्धि का नाश करने वाले पदार्थ हैं उनको सेवन कभी न करें और जितने अन्न सड़े बिगड़े, दुर्गन्धादि से दूषित अच्छे प्रकार न बनेहुए और मद्य माँसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्यमांस के परमाणुओं ही से पूरित है उन के हाथ का न खावें"।

इस से आगे गौ आदि उपकारक पशुओं के मारने में हानि जो संसार को पहुंचती है उसका वर्णन करके विषय का उपसंहार इस प्रकार करते हैं "जितना हिंसा और चोरी विश्वासघात, छल, कपटादि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसा धर्म आदि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष है। जिन पदार्थों से स्वास्थ्य, रोग नाश, बुद्धि, बल, पराक्रम वृद्धि और आयुवृद्धि होवे उन तांडुलादि, गोधूम, फल, मूल, कंद घी दूध मिष्टादि पदार्थों का सेवन पाक मेल करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना सब भक्ष्य कहाताहै'। ऋषि के इस प्रमाण पूरित लेख का सारांश यह है कि जो भक्ष्य पदार्थों का सेवन करने वाले हैं वे ही द्विज हैं और उनका एक पंक्ति में

बैठ कर खाना ठीक ही है. किन्तु जो मद्यमांस खाने पीने वाले अभक्ष्य पदार्थ सेवी अद्विज हैं उनको राक्षस समझना; उन को एक पंक्ति में भोजन के लिये बैठने देना तो दूर रहा उन के हाथ का बना भोजन तक द्विजों को ग्रहण नहीं करना चाहिये। तब कहिये आज कल जो मद्यमांस का सेवन करने वाली उपजातियों को अपनी पंक्ति में बैठाया जा रहाहै क्या पहिले उसी अनाचार का नाश नहीं करना चाहिये? शास्त्रमर्यादानुसार एक मद्यमांस का सेवन करने वाले जन्म के ब्राह्मण का भी कोई अधिकार नहीं कि वह धर्मात्मा जन्म के वैश्यों की पंक्ति में भोजन करने बैठे। जिन कायस्थों, खत्रियों, अरोड़ों, कन्नौजियों आदि ने अब तक मद्यमाँस का सेवन नहीं छोड़ा उन के हाथ का भोजन करना अलबत्ता अभक्ष्य है; इस के अतिरिक्त द्विजमात्र को एक पंक्ति में बैठ कर स्वच्छ शुद्ध जीवन व्यतीत करने वाले शूद्र का बनाया हुआ भोजन पाना ही आचार है।

यद्यपि पौराणिकों के अन्दर गुप्तरीति से ब्राह्मण और बढ़ई पढ़े लिखे दोस्तों का एक थाली में खाना प्रचरित होते हुए भी प्रत्यक्ष रीति से अबतक पुरानी छूत छात का रिवाज है परंतु आर्य्य समाजियों में आर्य्य

मात्र के एक पँक्ति में बैठ कर खाने का रिवाज कुछ उन्नति करता जाता है। फिर भी यह उन्नति अधिकतः पंजाब प्रांत की सीमा में ही परिमित है; संयुक्तप्रांत (जिसमें आर्य्यसमाजों की संख्या अधिक है) के अधिक स्थानों में अब तक ब्राह्मण कुलोत्पन्न आर्य्योपदेशक तथा आर्य्य सभासद् प्रायः दूसरे आर्य्यों के साथ खान पान में अंत्यजों का सा वर्ताव करते हैं, और बड़ा शोक यह है कि जिन अब्राह्मण कुलोत्पन्न व्याख्यान-दाताओं को वाणी द्वारा अपना पूज्य बतलाते तथा जिनका अत्यन्त मान करना अपना कर्तव्य समझते हैं उनके साथ भी देवीदीन कनौ-जिये की तरह का वर्ताव करते हैं। यह सब कुछ होते हुये भी भारतवर्ष के अन्दर एक ऐसी सामाजिक लहर चल निकली है जो थोड़े काल तक आर्य्यसन्तान मात्र को बिना इस भेद के कि वे वैदिक हैं वा पौराणिक, एक पंक्ति में भोजन के लिये बैठा देगी। परंतु जहाँ स्वदेशी आर्य्यों के साथ खान पान में छूतछात की साँकल ढीली होती जाती है वहां

बिदेशियों के साथ खानपान व्यवहार

के रास्ते में अब तक बड़ी भारी रुकावटें पड़ी हुई

हैं, जो कभी दूर नहीं होंगी जब तक युक्ति तथा शास्त्र प्रमाण, दोनों की सहायता, से यह सिद्ध न कर दिया जावे कि ऐसा करने से, न केवल यही कि कुछ हानि नहीं बल्कि विशेष अवस्थाओं में ऐसा न करने से प्रसिद्ध अन्याय होता है। विदेशियों के साथ खान पान में जो संकोच इस समय आर्य्य संतान में प्रचरित है वह अधिकृतः इस विश्वास पर निर्भर है कि आर्य्यशास्त्रों में इस को अनाचार बतलाया हुआ है। यदि यह शंका दूर हो जाय तो निर्पक्ष ८० फ़ीसदी हमारे भाई तो बिना किसी संकोच के अभक्ष्य पदार्थों से घृणा करने वाले धार्मिक विदेशियों के साथ खान पान व्यवहार आरम्भ करदें। और फिर विदेश यात्रा के रास्ते से भी वह, थोड़ी बहुत, रुकावट दूर हो जाय जो किसी २ समय बड़े २ भारत भूषणों को अपनी योग्यता द्वारा विदेशियों का प्रेम भारतवर्ष के लिये खींचने से रोक देती है। तब पहिले इसी पर विचार करना आवश्यक है कि विदेशियों के साथ एक पंक्ति में आर्य्यों का भोजन करना किन कारणों से निन्दित समझा जाता है

जब किसी पौराणिक भाई को किसी ईसाई वा मु-

सलमान के साथ एक पंक्ति में बैठ कर भोजन करने को कहा जाय तो उसका पहिला उत्तर यह होता है—"एं! क्या मुसलमान ईसाई के साथ बैठकर भोजन करें, जब अन्य मतावलम्बी के साथ खाने का शास्त्र स्पष्ट निषेध करता है"। किंतु यदि प्रमाण मांगो तो फिर उत्तर में इतनी तेज़ी नहीं रहती और फिर यदि यह पूछो कि 'अगर मतभेद ही एक साथ न खाने का कारण है तो वेद निन्दक जैनियों, बौद्धों आदि से खान पान व्यवहार तो एक ओर रहा विवाहादि में भी क्यों परहेज़ नहीं करते हो"—तो सिवाय आश्चर्य से मुँह बाय देने के कोई संतोषजनक उत्तर नहीं सूझता। यह स्पष्ट है कि एक मुसलमान वा ईसाई के साथ एक पंक्ति में भोजन न करने के लिये यह कोई दलील नहीं है कि उसका धार्मिक मन्तव्य हम से भिन्न है; यदि केवल यही कारण होता तो जैनियों बौद्धों, नास्तिक रोड़ों तथा अंग्रेज़ी पढ़े आपापंथियों के साथ एक पंक्ति में बैठकर भोजन करना भी पाप समझा जाता। जब इस प्रकार सर्वथा निरुत्तर होने लगते हैं तब हमारे पौराणिक भाइयों को असली उत्तर सूझता है—"ईसाई मुसलमान तो मद्य मांस का सेवन करने वाले म्लेच्छ हैं, तब उनके साथ एक पंक्ति में भोजन कैसे

किया जावे ?" यह उत्तर ठीक है, किंतु क्या सर्व पौराणिक भाइयों को यह उत्तर शोभा देता है ? क्या वाममार्गी पौराणिकों का इस उत्तर से छुटकारा हो सकता है ? क्या मद्यमांस का प्रत्यक्ष सेवन करने वाले कनौजिए, कायस्थ, पंजाब की सरहद के खत्री और अरोड़े तथा अन्य मद्यपों तथा मांसाशियों को ऐसा उत्तर देने का कुछ भी अधिकार है ? हां यह उत्तर मद्यमांस के सेवन को पाप समझने वाले आर्य्यसमाजिस्थ पुरुषों के मुख में शोभा देता है किंतु उनमें से भी ऐसा उत्तर देने के अधिकारी वे नहीं समझे जा सकते हैं जो मांसभक्षण को वेदानुकूल समझते तथा उसका सेवन करते हैं ।

अब मामला बहुत साफ़ हो गया । धार्मिक मतभेद आपुस के खान पान व्यवहार में बाधक नहीं होना चाहिये जब तक कि उस मत भेद के कारण खान पान में भी मत भेद न हो । नास्तिक तथा आस्तिक एक पंक्ति में खा सकते हैं, यदि दोनों एक प्रकार का भोजन करने वाले हों; किन्तु एक मत के अनुयायी होते हुये भी एक फलाहारी वैष्णव के लिये उस पंक्ति में भोजन करना असह्य होगा जिसमें मांस परोसा जाय । जब भोजन भेद का मूल कारण यह है तो समझ में नहीं आता कि जो

ईसाई, मुसलमान, पारसी यहूदी आदि भाई मद्यमांस का सर्वथा त्याग करके भोजन सम्बन्ध में अपना जीवन सात्विक बना चुके हैं उनके साथ खान पान व्यवहार में घृणा क्यों की जाती है ? असल बात कुछ और ही है जिसको एक आप बीते दृष्टान्त से स्पष्ट करता हूं। जब देवी एनीबेसेन्ट पहिले पहिल जालंधर नगर में आईं तो जालन्धर के कुछ पौराणिक थियासाफ़िस्ट मेरे पास उन के व्याख्यान के प्रबन्ध में सहायता लेने आये। बात चीत करते हुये मैंने उनसे पूछा कि जब पौराणिक शास्त्रों में स्त्री को वेदों का अनधिकार लिखा है और शूद्र की कोटि में उनकी गणना की है तो वे लोग एक औरत को क्यों गुरू बनाये बैठे हैं। उत्तर मिला कि देवी बसन्ती के "अरे" बड़े शुद्ध तथा उच्च हैं। वह स्त्री नहीं, वह हम सब से बहुत ऊँची आत्मिकोन्नति कर चुकी हैं। उसके पश्चात् अंग्रेज़ों के साथ खान पान का प्रश्न छिड़ा जिसके उत्तर में उन्हों ने कहा कि जिनके 'अरे' अशुद्ध हैं उन के साथ भोजन करने से अपनी आत्मिक अवस्था भी गिरती है। फिर क्या था, मैंने यह प्रस्ताव पेश किया कि श्रीमती देवी ऐनीबेसेन्ट जी के साथ सारे पौराणिक थियासो-फ़िस्ट तथा आर्य्यसमाजस्थ पुरुष भोजन के लिये बैठें।

अब तो थियासोफ़िस्ट पकड़े गये और उन को स्पष्ट मानना पड़ा कि ठीक तो यही है किन्तु सर्वसाधारण में कोलाहल होगा, इस लिये उनका हौसला नहीं पड़ता।

हा! जिस भारतवर्ष में एक चतुर्वेदी परिव्राजक संन्यासी की निष्पक्ष व्यवस्था को करोड़ों साधारण पुरुषों की विरुद्ध सम्मति के मुक़ाबिले में माना जाता था, जिस आर्य्यवर्त्त में निर्धन ब्राह्मण मुख्य माने जाते थे इस समय मूर्ख मंडली के आगे ब्राह्मण और संन्यासी दोनों शिर झुकाये हुए हैं! उस अभागे देश की दशा कैसी शोचनीय है जहां पैरों ने शिर का स्थान छीन लिया हो!

सारांश यह कि यदि मुसलमानों, यहूदियों, ईसाइयों इत्यादि के साथ एक पंक्ति में खाने से आर्य्यों को इन्कार हो सकता है तो केवल इस लिये कि उनके अन्दर म्लेच्छ भोजन का प्रचार है। इस विषय में ऋषि दयानन्द की सम्मति बहुत ही युक्ति युक्त है। प्रतिपक्षी की ओर से यह प्रश्न उठा कर कि "आर्य्यवर्त्त देशवासियों का आर्य्यवर्त्त देश से भिन्न भिन्न देशों में जाने से आचार नष्ट हो जाता है" उत्तर देते हैं:—

"यह बात मिथ्या है क्योंकि जो बाहिर, भीतर की

पवित्रता करनी सत्यभाषणादि आचरण करना है वह जहाँ कहीं करेगा आचार और धर्म भ्रष्ट कभी नहीं होगा। और आर्य्यवर्त में रह कर भी दुष्टाचार करेगा वही धर्म और आचार भ्रष्ट कहावेगा" फिर पाताल अर्थात् अमेरिका देश में व्यास जी से उनके पुत्र शुकाचार्य्य का आत्मविषयक प्रश्न और उसके उत्तर लेने के लिये व्यास जी के उन्हें मिथिलापुरी भेजने की कथा लिख कर उनकी यात्रा के मार्ग का यों वर्णन किया है: —

"प्रथम मेरु अर्थात् हिमालय से ईशान उत्तर और वायव्य कोण में जो देश बसते हैं उनका नाम हरिवर्ष था.......जिन देशों का नाम इस समय यूरोप है उन्हीं को संस्कृत में हरिवर्ष कहते हैं, उन देशों को देखते हुए और जिनको हूण (यहूदी) भी कहते हैं उन देशों को देखकर चीन से हिमालय और हिमालय से मिथिलापुरी को आये। और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन पाताल में अश्व-तरी अर्थात् जिसको अग्नियान नौका कहते हैं उस पर बैठ के पाताल में जाके महाराज युधिष्ठिर के यज्ञ में उद्दा-लक ऋषि को ले आये थे। धृतराष्ट्र का विवाह गांधार जिसको 'कंधार' कहते हैं वहां की राजपुत्री से हुआ था, माद्री पांडु की स्त्री ईरान के राजा की कन्या थी और

अर्जुन का विवाह पाताल में......वहां के राजा की लड़की 'अलोपी' के साथ हुआ था। जो देश देशान्तर द्वीप द्वीपान्तर में न जाते होते तो ये सब बातें क्यों कर हो सकतीं? मनुस्मृति में जो समुद्र में जाने वाली नौका पर कर लेना लिखा है वह भी आर्यवर्त्त से द्वीपान्तर में जाने का कारण है और जब महाराजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया था उस में सब भूगोल के राजाओं को बुलाने को निमन्त्रण देने के लिये भीम, नकुल और सहदेव चारों दिशाओं में गये थे; जो दोष मानते होते तो कभी न जाते। प्रथम आर्य्यवर्त देशीय लोग व्यापार राजकार्य्य और भ्रमणके लिये सब भूगोल में घूमते थे और जो आज कल छूत छात और धर्म नष्ट होने की शंका है वह केवल मूर्खों के बहकाने और अज्ञान बढ़ने से है............भला जो यह महाभ्रष्ट म्लेच्छ कुलोत्पन्न वेश्या आदि के समागम से आचार भ्रष्ट धर्महीन नहीं होते किन्तु देश देशान्तर के उत्तम पुरुषों के साथ समागम में छूत और दोष मानते हैं!!! यह केवल मूर्खों की बात नहीं तो क्या है?" फिर लिखा है:—

"सज्जन लोगों को रागद्वेष, अन्याय, मिथ्याभाषणादि दोषों को छोड़ निर्वैर प्रीत, परोपकार, सज्जनतादि

का धारण करना उत्तम आचार है और यह भी समझलें कि 'धर्म हमारे आत्मा और कर्तव्य के साथ है'। जब अच्छे काम करते हैं तो हम को देश देशान्तर द्वीपद्वीपान्तर जाने में कुछ भी दोष नहीं लगसकता, दोष तो पाप के काम करने में लगता है। हां इतना अवश्य चाहिये कि वेदोक्त धर्म का निश्चय और पाखंड मत का खंडन करना अवश्य सीखलें जिससे कोई हम को झूठा निश्चय न करा सके'। ऊपर के उद्धृत लेखों से स्पष्ट विदित होता है कि वर्तमान छूतछात के लिये शास्त्रों में तो क्या प्राचीन इतिहास से भी कोई आधार नहीं मिलता। तब यह छूतछात रूपी कलह तथा द्वेष फैलाने वाली राक्षसी का आगमन कैसे हुआ? ऋषि दयानन्द लिखते हैं:—

"महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भूगोल के राजा ऋषि महर्षि आये। एक ही पाकशाला से भोजन किया करते थे। जब से ईसाई मत मतान्तर चले, आपस में वैर विरोध हुआ उन्होंने मद्यपान गोमांसादि का खाना पीना स्वीकार किया उसी समय से भोजनादि में बखेड़ा होगया। देखो! काबुल, कंधार, ईरान, यूरोप आदि देशों के राजाओं की कन्या गांधारी, माद्री, उलोपी आदि

के साथ आर्यवर्त देशीयराजा लोग विवाह आदि व्यवहार करते थे, शुकुनि आदि कौरव पांडवों के साथ खाते पीते थे विरोध नहीं करते थे, क्योंकि उस समय सर्व भूगोल में वेदोक्त एक मत था" ।

उपरोक्त लेख से यह सिद्ध होता है कि जब सारे भूमंडल में केवल एक वैदिक धर्म का ही प्रचार था उस समय मद्य मांसादि का सेवन पाप समझा जाता था। अहिंसा धर्म के प्रचारक ऋषि बुद्धदेव के जीवन चरित्र से भी यही पता लगता है कि वेदों के गलेमद्य मांसादि का दोष महाभारत युद्ध के पश्चात् वामियों ने मढ़ा था, क्योंकि बुद्धदेव ने स्पष्ट कहा था कि वह उस धर्म को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न करते हैं जिस का प्राचीन ब्राह्मण सेवन करते थे। मेरी सम्मति में तो वर्तमान समय के पौराणिक भी अपने अमल से यही कह रहे हैं कि पुराना वैदिक धर्म हिंसा की, किसी अवस्था में भी, आज्ञा नहीं देता, क्योंकि यदि उनका यह विश्वास न होता वे मद्य मांसाहारी जातियों के साथ खान पान व्यवहार से इतनी घृणा न करें। अब प्रश्न यह रह जाता है कि जब पौराणिक लोग स्वयं यज्ञ में हिंसा की विधि मानते हैं तो उनका मांसाहारियों से घृणा करना कहां तक न्याय

युक्त है। तब इस विषय में विचार केवल उन आर्य्य-समाजियों का ही रह जाता है जो मद्यमाँसादि के सेवन को पाप समझते हुये स्वयं उनका सेवन नहीं करते। जो आर्य्य समाजी कहलाते हुये भी मांसभक्षण को वेदानुकूल मानते हैं वा मांसभक्षण को पाप समझते हुये भी स्वयं मांसभक्षण करते हैं उनकी गणना इस अंश में मैं पौराणिकों के साथ ही करता हूं।

क्या आर्य्य पुरुषों को निःशङ्क हो कर ईसाई, मुसलमानादि के हाथका भोजन खाना चाहिये? इसका उत्तर तो यही है कि इनके हाथ का बना भोजन खाने में कुछ दोष नहीं मालूम होता यदि वह भोजन सात्विक है। ऋषि दयानन्द ने जहां शूद्र के हाथ का बना भोजन खाने की व्यवस्था दी है वहां चाण्डाल के हाथ का खाने से मना किया है यदि ईसाई मुसलमान के हाथ का खाना वर्जित समझते तो उनका भी साथ ही ज़िक्र करते, किन्तु करते कैसे? जब इस निषेध का कारण ही अन्य है। यह प्रश्न उठाकर कि मनुष्य मात्र के हाथकी की हुई रसोई के खाने में क्या दोष है? उत्तर में लिखते हैं— दोष है, क्योंकि जिन उत्तम पदार्थों के खाने पीने से ब्राह्मण और ब्राह्मणी के शरीर में दुर्गन्धादि दोष रहित रज

वीर्य्य उत्पन्न होता है वैसा चांडाल और चांडाली के शरीर में नहीं। क्योंकि चांडाल का शरीर दुर्गन्ध के परमाणुओं से भरा होता है वैसा ब्राह्मणादि वर्णों का नहीं; इस लिये ब्राह्मणादि उत्तम वर्णों के हाथ का खाना और नीच चांडाल भंगी चमारादि का न खाना"।

अब विचार केवल यह बाक़ी रह गया है कि विदेशियों के साथ खान पान में शङ्का का मूल कारण क्या है। ऋषि दयानन्द लिखते हैः—"हां,मुसलमान ईसाई आदि मद्यमांसाहारियों के हाथके खाने में आर्य्यों को भी मद्यमांसादि खाना पीना अपराध पीछे लग पड़ता है" फिर लिखते हः-' हां,इतना कारण तो है कि जो लोग मांसभक्षण और मद्यपान करते हैं उनके शरीर और वीर्य्यादि धातु भी दुर्गन्धादिसे दूषित होते हैं। इसलिये उनके सङ्ग करने से आर्य्यों को भी यह कुलक्षण न लग जाय यह तो ठीक है, परन्तु इन से व्यवहार और गुण ग्रहण करने में कोई दोष नहीं है किन्तु इनसे मद्यपानादि दोष छोड़ गुणों को ग्रहण करें तो कुछ भी हानि नहीं"। यहां मामला बिल्कुल साफ़ हो गया। मद्यमांस के अभ्यासियों के साथ खान पान व्यवहार में इस लिये संकोच चाहिये कि कहीं यह दोष आर्य्यों को भी न लग जाय, किन्तु जब पौराणिक

मद्यमांस सेवी जातियों से कोई सँकोच नहीं, जब ऐसी जातियों के साथ जिनके यहां घुट्टी में शराब दी जातीहै, रोटी तो एक ओर रही बेटी तक का व्यवहार जारी है, तो धर्मात्मा सभ्य ईसाई तथा मुसलमानों के साथ केवल इस लिये खान पान व्यवहार मेंशङ्का करना कि वे ऐसीजातियों में उत्पन्न हुए हैं जिन में मद्यमांस का प्रचार है, पक्षपात और सर्वथा अन्याय है। सारांश इस सारी पड़ताल का यह निकला कि मद्यप तथा मांसाहारी चाहे पौराणिक, ईसाई, मुसलमानादि तथा आर्य्य-समाजिक कोई भी क्यों न हो उसके हाथ का भोजन करने तथा उसके साथ बैठ कर खाने में यह सम्भावना अवश्य है कि कहीं शुद्ध आर्य्यों को भी यह दोष न लग जाय, किन्तु जब पौराणिक तथा आर्य्य-समाजी मांसाहारियों से खान पान में संकोच नहीं किया जाता तो ईसाई आदि से संकोच करना बड़ा भारी अन्याय है।

बहुत से भाई यह मान कर कि ऋषि दयानन्द का मन्तव्य उपरोक्त ही था, यह कह दिया करते हैं कि इस नियम का समर्थन करते हुए भी ऋषि दयानन्द का यह मतलब न था कि इस पर आचरण भी किया जाय।

अपनी इस प्रतिज्ञा के लिये वह सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास का वह भाग पेश करते हैं जिस का "ब्राह्म समाज और प्रार्थना समाज" के साथ सम्बन्ध है। ब्राह्म समाज के कुछ लोगों को ईसाई होने से बचाने तथा मूर्ति पूजा से कुछ एक को हटाने की प्रशंसा करके लिखा है—"परन्तु इन लोगों में स्वदेश भक्ति बहुत न्यून है। ईसाइयों के आचरण बहुत से लिये हैं, खान पान विवाह के नियम भी बदल दिये हैं........ब्राह्म-समाज के उद्देश के पुस्तक में साधुओं की संख्या में "ईसा" "मूसा" "नानक" और "चैतन्य" लिखे हैं, किसी ऋषि महर्षि का नाम भी नहीं लिखा; इससे जाना जाता है कि इन लोगों ने जिन का नाम लिखा है, उन्हीं के मतानुसारी मत वाले हैं। भला जब आर्य्यवर्त में उत्पन्न हुये हैं और इसी देश का अन्न जल खाया पिया अब भी खाते पीते हैं अपने माता पिता पितामहादि के मार्ग को छोड़ दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना, ब्राह्म समाजी और प्रार्थना समाजियों का एतद्देशस्थ संस्कृत विद्या से रहित अपने को विद्वान् प्रकाशित करना, इङ्गलिश भाषा पढ़ के पंडिताभिमानी होकर झटिति एक मत चलाने में प्रवृत्त होना मनुष्यों का स्थिर और

बुद्धि कारक काम क्यों कर हो सकता है ? ४–अंग्रेज़ यवन अन्त्यजादि से भी खाने पीने का भेद नहीं रक्खा।''

जिन अन्तिम शब्दों को मैंने मोटा कर दिया है उन्हें हाथ में लेकर कई प्रसिद्ध आर्य्य समाजी कहा करते हैं कि इस लेख से स्वामी दयानन्द ने ईसाइयों तथा मुसलमानों को अन्त्यजों के साथ शामिल करके, उनके साथ खान पान व्यवहार का सदा के लिये निषेध कर दिया है। यदि ऋषि दयानन्द के ऊपर उद्धृत किये लेख का यही अर्थ समझ लिया जाय तो उनके पूर्व लेखों से यह विरुद्ध पड़ता है। ऋषि दयानन्द अपने मन्तव्यों के प्रचार में सदा निश्शङ्क रहे हैं और इस लिये सम्भावना नहीं है कि उनके लेखों पर व्याघात दोष घट सके। इस लिये यही मानना पड़ेगा कि या तो ये शब्द ऋषि दयानन्द की मृत्यु के पश्चात् (क्योंकि उन के जीवन में दशमसमुल्लास तक भी पूरा नहीं छपा था) किसी पौराणिक पंडित ने बीच में डाल दिये या ऋषि के इस लेख का तात्पर्य्य ही और है। और यदि ऊपर उद्धृत किये लेख से आगे पढ़ें तो स्पष्ट पता लगता है कि ब्राह्म-समाज पर उपरोक्त कटाक्ष का तात्पर्य्य कुछ अन्य ही है। ऋषि लिखते हैं "इन्हों (ब्रह्म समाजियों)

ने यही समझा होगा कि खाने पीने और जाति भेद तोड़ने से हम और हमारा देश सुधर जायगा परन्तु ऐसी बातों से सुधार तो कहां उलटा बिगाड़ होता है"। इसका कारण आगे चलकर बतलाते हैं कि बिगाड़ क्यों होता है:—"देखो वैद्य और औषध की आवश्यकता रोगी के लिये है नीरोग के लिये नहीं। विद्यावान नीरोग और विद्यारहित अविद्या रोग से ग्रस्त रहता है, उस रोग को छुड़ाने के लिये सत्यविद्या और सत्योपदेश हैं। उनको अविद्या से रोग यह है कि खाने पीने ही में धर्म रहता और जाता है....इस लिये विद्वान् को यथायोग्य व्यवहार कर के अज्ञानियों को दुःख सागर से तारने के लिये नौका रूप होना चाहिये................" अब कोई संशय नहीं रहा कि ईसाईयों तथा मुसलमानों के साथ खान पान व्यवहार का निषेध तो ऋषि दयानन्द ने इसी असूल पर किया है कि उन लोगों के संसर्ग से कहीं आर्य्यों में भी मद्यमांसादि का प्रचार न हो जावे किन्तु ब्राह्मसमाज के इस नुमायशी धर्म को बहुत ही बुरा समझते हैं जिस के कारण सर्व साधारण भारतनिवासियों को उनसे घृणा हो जाती है।

जो लोग ऋषि के इस लेख के ठीक भावको सम-

झना चाहें वे बाबू प्रतापचंद्र मोज़मदार महोदय के लिखे हुऐ बाबु केशवचंद्रसेन के जीवन चरित्रको पढ़ें। उससे ज्ञात होता है कि जिस समय ब्राह्मसमाज की स्थापना हुई उस समय पौराणिक मत से तंग आये हुये अंग्रेज़ी पढ़े आपापन्थियों ने प्रसिद्धी से होटलों में खाना ही नहीं प्रत्युत गोमांस के प्रत्यक्ष सेवन तक को अपनी स्वतन्त्रता की नुमाइश का गौरव समझ छोड़ा था। पंजाब ब्राह्मसमाज के आज से ३० वा ३२ वर्ष पहिले के] दृश्य पुराने लाहौरियों को न भूले होंगे जब कि प्रत्येक सप्ताह ब्राह्मसमाज में मुसलमान के हाथ से पानी पीने वा किसी अन्य प्रकार से अपनी स्वतन्त्रता का परिचय देने का नाटक दिखाया जाया करता था इसी लिये तो ऋषि दयानन्द ने निम्नलिखित प्रश्नोत्तर में अपना भाव स्पष्ट प्रकट कर दिया है: —

"(प्रश्न) देखो यूरोपियन लोग मुण्डे जूते, कोट, पतलून पहनते, होटल में सबके हाथ का खाते हैं इसी लिये अपनी बढ़ती किए जाते हैं। (उत्तर) यह तुम्हारी भूल है क्योंकि मुसलमान, अन्त्यज लोग सबके हाथ का खाते हैं पुनः उनकी उन्नति क्यों नहीं होती? जो यूरोपियनों में बाल्यावस्था में विवाह न करना, लड़का, लड़की को

विद्या सुशिक्षा करना कराना, स्वयंवर विवाह होना बुरे २ आदमियों का उपदेश नहीं होता ....
अपनी स्वजाति की उन्नति के लिये तन मन धन व्यय करते हैं ...... देखो ! कुछ सौवर्ष से ऊपर इस देश में आये यूरोपियनों को हुये और आज तक ये लोग मोटे कपड़े आदि पहरते हैं जैसा कि स्वदेश में पहरते थे परन्तु उन्हों ने अपने देश का चाल चलन नहीं छोड़ा और तुममें से बहुत से लोगों ने उनका अनुकरण कर लिया। इसी से तुम निर्बुद्धि और वे बुद्धिमान ठहरते हैं। अनुकरण का करना किसी बुद्धिमान का काम नहीं........
अपने देश वालों को व्यापार में सहायता देते हैं इत्यादि गुणों और अच्छे२ कामों से उनकी उन्नति है मुण्डे जूते, कोट, पतलून, होटल में खाने पीने आदि साधारण और बुरे कामों से नहीं बढ़े हैं ......"

यहां खाने पीने को सर्वथा साधारण काम बतलाया है; और है भी बात यही ! क्या मेज़ के गिर्द कुर्सियों पर बैठकर खाने से कुछ पाचकशक्ति बढ़ जाती है ? फिर "कम खर्च वाला नशीन" वाली भूमि पर भोजन पंक्ति को छोड़कर मेज़ कुर्सी लगाकर खाने से सिवाय अनुकरण की निर्बुद्धिता के और क्या सिद्ध होता

हैं । ऋषि दयानन्द यहां ब्राह्मसमाजियों के अंधे अनुकरण को दूषित बतलाते हैं, उनका मतलब अपने दशम समुल्लास में स्थिर किये भक्ष्याऽभक्ष्य सम्बंधी नियम को बदलने से नहीं है । ब्राह्मसमाज के मंदिरों में जो ईसाई गिरजोंकी नक़ल में बहुत सा धन व्यय किया जाता है उसे कोई भी बुद्धिमान पुरुष सराहनीय नहीं समझता । इसके अतिरिक्त जब सभी मज़हबों में सचाई समझते हैं तो सब मज़हबों के श्रोत वैदिक धर्म से क्यों नहीं अधिक काम लेते जिससे अपने करोड़ों भाइयों का कल्याण कर सकें । ऋषि दयानंद तभी तो लिखते हैं; —"और तुम आर्य्यावर्त्त की उन्नति के कारण भी नहीं होसके क्योंकि तुम सब घरके भिक्षुक ठहरे हो । तुमने समझा है कि इसबात से हम लोग अपना और पराया उपकार कर सकेंगे; सो न कर सकोगे । जैसे किसी के दो ही माता पिता सब संसार के लड़कों का पालन करने लगें; सब का पालन करना तो असम्भव है किंतु उस बात से अपने लड़कों को भी नष्ट कर बैठें— वैसे ही आप लोगों की गति है । भला वेदादि सत्य-शास्त्रों के माने बिना तुम अपने बचनों की सत्यता और असत्यता की परीक्षा और आर्य्यवर्त्त की उन्नति भी

कभी कर सकते हो ? जिस देश को रोग हुआ उसकी औषधि तुम्हारे पास नहीं और यूरोपियन लोग तुम्हारी अपेक्षा नहीं करते और आर्य्यवर्त्तीय लोग तुम को अन्य मतियों के सदृश समझते हैं, अब भी समझ कर वेदादि के मान्य से देशोन्नति करने लगो तो भी अच्छा है। जो तुम यह कहते हो कि सब सत्य परमेश्वर से प्रकाशित होता है पुनः ऋषियों के आत्माओं में ईश्वर से प्रकाशित हुए सत्यार्थ वेदों को क्यों नहीं मानते ?" फिर लिखा है; —"हम और आप को अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना अब भी पालन होता है आगे होगा; उसकी उन्नति तन मन धन से सब जने मिल कर प्रीति से करें इसलिये जैसा आर्य्यसमाज आर्य्यवर्त्त की उन्नति का कारण है वैसा दूसरा नहीं हो सकता।"

जिस समय ऋषि दयानन्द ने उपरोक्त लेख लिखे थे वह समय ही कुछ और था। आज समय में बड़ा भारी परिवर्तन हो रहा है। हमारे ब्राह्मसमाजी भाइयों ने भी समझ लिया है कि इस प्रकार की नुमाइशों से धर्म को कुछ भी लाभ नहीं पहुँच सकता। पहिले वह समय था जब कि हमारे पौराणिक भाइयों में से बहुत से प्रसिद्ध पूजा-पाठी अंग्रेज़ों से मिलकर पश्चात् स्नान किया करते थे।

आज वही पौराणिक गुप्तरीति से होटलों में अभक्ष्य भोजन तक करके भी अपने आपको पतित नहीं समझते। अभी थोड़े वर्ष ही हुए जब सर गुरुदास बेनर्जी से कर्मकाण्डी पौराणिक महाशय ने भी व्यवस्था दे दी थी कि विदेश यात्रा में कुछ भी पाप नहीं, प्रत्युत बहुत से लाभ हैं। इस समय खान पान व्यवहार में, सिवाय भक्ष्याऽभक्ष्य के शास्त्रीय बन्धनों की रुकावट के, अन्य अन्याययुक्त रुकावटों का डालना उलटा धर्म के लिये हानि कारक होगा।

एक बात पर निश्चय रखना चाहिये कि सर्वसाधारण मूर्ख नहीं होते जैसा कि पढ़े लिखे लोगों ने समझ रखा है। सर्वसाधारण में सत्य को ग्रहण करने का भाव बड़े आदमियों की अपेक्षा अधिक स्वच्छ अवस्था में होता है। यदि सत्य को उनके सामने ठीक अवस्था में पेश किया जाय तो वे उसे बड़े उत्साह से स्वीकार करते हैं। नुमायश के जहां वे, उसकी ठीक व्यवस्था जानने पर, शत्रु हैं वहां तप के लिए उनके दिलों में पूर्ण श्रद्धा है; इसलिये देशहितैषी परोपकारी सज्जनों का कर्तव्य है कि धार्मिक सिद्धान्तों को सर्वसाधारण के सामने ज्यों का त्यों रख दें।

खान पान विषय में जो अन्तिम शङ्का थी उसका भी निवारण हो गया। मेरी सम्मति में यदि भक्ष्याऽभक्ष्य के नियम पर सुशिक्षित आर्य्य पुरुष आज से बीस वर्ष पहिले ही अमल शुरू कर देते तो आज जो मक्कारी फैली हुई है वह दिखाई न देती। मैंने रेल के सफ़र में उन टीकाधारियों को, जो मेरे गाड़ी में फल तथा रोटी खाने पर नाक भौं चढ़ाते थे, आंख छिपा कर रेल के होटल में अभक्ष्य का भक्षण करते देखा है। मैंने ऐसे आदमियों को खत्री, ब्राह्मण, वैश्यादि बिरादरियों के मुखिया सर्दारों में देखा है जिनके यहां मुसलमान बावरची भोजन बनाते तथा जिनके मेज़ पर ईसाई और मुसलमान बकरा और मुर्ग़ा से लेकर सभी जानवरों की हड्डियां चबाते नज़र आते हैं। राजपूताने के राजों तथा राजकुमारों के यहां प्रायः अंग्रेज़ी खाना बनाने वाले मुसलमान बावरची देखने में आते हैं। बड़ी से बड़ी और छोटी से छोटी कौन सी पौराणिक बिरादरी है जिसके बहुत से भूषण छिप कर अपने हाकिमों के साथ खानों में सम्मिलित होकर, अभक्ष्य मांसादि के सेवन के अभ्यासी नहीं हो जाते। जहां युरोप, ब्रिटेन और अमेरिका के विचारशील पुरुष मांस भोजन का त्याग करते

जाते हैं वहां भारत निवासी नई सभ्यता के चेले नए सिरे से मांस भोजन का अभ्यास करने लगे हैं। इस शोचनीय अव्यवस्था को दूर करने का एक ही उपाय है, वह यह कि खान पान के नियमों को स्थिर करके उन पर चलने वालों पर समाज अन्याय से उपद्रव करना छोड़ दे। तब सम्भव होगा कि जो लोग वास्तव में वेद शास्त्र के विरुद्ध आचरण करें उन तक समाज के असन्तोष का असर पहुंच सके, और वे समाज का मान करते हुए, अपने आचरणों को ठीक करने की ओर ध्यान दें।

ऋषि दयानन्द का एक लेख और उद्धृत करता हूं जिससे पता लगेगा कि वह छूत छात का मूल प्रेरक क्या समझते थे। दशम समुल्लास में विदेशयात्रा की आवश्यकता को जतलाते हुए लिखते हैं;—'क्या विना देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में राज्य वा व्यापार किये स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती है? जब स्वदेश ही में स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश में व्यवहार वा राज्य करें तो विना दारिद्र और दुःख के दूसरा कुछ भी नहीं होसकता! पाखण्डी लोग यह समझते हैं कि जो हम इनको विद्या पढ़ावेंगे और देश

देशान्तर जाने की आज्ञा देंगे तो ये बुद्धिमान होकर हमारे पाखण्ड जाल में न फँसने से हमारी प्रतिष्ठा और जीविका नष्ट होजायगी, इसी लिये भोजन छादन में बखेड़ा डालते हैं कि दूसरे देश में न जा सकें"। यदि पौराणिक पंडितों ने अब तक यही समझा हुआ है कि उनकी व्यवस्थाओं के डर से लोग विदेश यात्रा छोड़देंगे तो उन्हें अपनी भूल को तत्काल ही दूर कर देना चाहिये। लोग विदेश तो दिनों दिन अधिक संख्या में जायेंगे ही और वहां विदेशियों के साथ भोजन भी करेंगे; भेद केवल इतना ही है कि वर्तमान अवस्था में तो वे यह समझ कर, कि धर्म का उल्लङ्घन करके उन्हें मेज़ पर छुरी कांटे से खाना नसीब हुआ है, निन्दित से निन्दित अभक्ष्य को भी नहीं छोड़ेंगे, किन्तु जब विदेशी सभ्यों के साथ बैठ कर सात्विक भोजन करना पाप न समझा जायगा तो वे विदेश में भी निस्सन्देह होकर मांस मद्यादि का खंडन किया करेंगे, और शायद बहुत से मांसाहारियों को म्लेच्छ भोजन से मुक्ति दिलाने में भी कृतकार्य हों।

यदि मांसाहारियों की औलाद मद्य मांसादि अभक्ष्य पदार्थों को छोड़, मेज़ कुर्सी छुरी कांटे से मुँह मोड़,

सात्विक भोजन करने में शामिल हुई तो इस का असर उन पर कार्य समाप्ति के पश्चात् भी रहेगा।

उपसंहार

उपसंहार में केवल सारे लेख का सारांश बतलाना है। यह स्पष्टतया सिद्ध है कि विदेशियों के साथ खान पान का संकोच इसलिये नहीं है कि उन का धार्मिक मतभेद आर्य्यों के साथ है बल्कि इसलिये कि वे अभक्ष्य मद्यमांसादि का जन्मान्तर से सेवन करते हैं, और वह पाप आर्य्यों के भी न चिमट जावे। दृष्टान्त के लिये जैनी आदि अन्य मतावलम्बी हैं जिन के साथ इसीलिये सङ्कोच नहीं कि वे अभक्ष्य सेवी नहीं हैं। तब आर्य्यों में जो अभक्ष्य सेवी हैं उन से भी वैसा ही संकोच होना चाहिये था जो नहीं होता, बस, न्याय चाहता है कि विदेशियों से भी वह संकोच न रहे। जिस समय ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश लिखा था खान पान में युरोपियनों का प्रभाव हम पर पड़ रहा था। अब बहुत से बड़े २ युरोपियन डाक्टर भी मांस भक्षण के दूषणों को स्वीकार करते हैं, इस लिये विदेशियों के साथ खान पान व्यवहार करने से आज हम

उनके दुर्व्यसन दूर कर सकते हैं। अपने यहां विदेशियों को भोजन कराते हुये यदि हम अपना ही भोजनशाला सम्बन्धी नियम रक्खें तो विदेशियों के आचरणों में भी बहुत सा उत्तम परिवर्तन आसकता है। ऐसे नियमों का प्रचार जब असाधारण न रहेगा तो नुमायश में पड़ कर आर्य्य युवक भी सभ्यता तथा सदाचार की सीमा का उल्लङ्घन न कर सकेंगे।

मैं यह नहीं कहता कि विदेशी सभ्यों के साथ खान पान का बन्धन तोड़ने से ही हम वर्त्तमान गिरी हुई अवस्था से उठ खड़े होंगे। ऋषि दयानन्द ने ठीक कहा है,—"परन्तु केवल खाना पीना ही एक होने से सुधार नहीं हो सकता, किन्तु जब तक बुरी बातें नहीं छोड़ते और अच्छी बातें नहीं करते तब तक बढ़ती के बदले हानि होती है।१" हां, यह मैं अवश्य कहूंगा कि इस गिरी हुई अवस्था से उठने के लिये हमें विदेशी धर्मात्मा सभ्यों की सहानुभूति की भी अत्यन्तावश्यकता है, जिस को गंवाकर हम अपने आप को कुछ न कुछ हानि ही पहुंचा रहे हैं। और सब से बढ़ कर यह बात है कि स्वदेशी मद्य मांसाहारी व्यभिचारी आदिकों के साथ

भोजन करने में संकोच न करते हुये, विदेशी धर्मात्मा पुरुषों के साथ भोजन करने में घृणा प्रकाशित करके, पक्षपात तथा अन्याय में पड़ हम साक्षात् धर्म का हनन कर रहे हैं। आर्य्य-समाजिस्थ वीरों! तुम्हारे देश के सारे सभ्यसमाज की दृष्टि तुम पर लगी हुई है। बढ़ो! और इस अंश में उन सब को अपने पीछे लगाओ जैसे अन्य धार्मिक कामों में अगुआ बन कर तुम उन को आगे ले चलते रहे हो।

"अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्या-
यात्पथः प्रविचलन्ति पदम् न धीराः।"



लीजिये !

सद्धर्म्म-प्रचारक यन्त्रालय

मन्दिर सत्यनारायण

देहली में

अंग्रेज़ी, हिन्दी और उर्दू

तीनों भाषाओं में

प्रत्येक प्रकार की छपाई का काम

(यानी पुस्तक, समाचार पत्र और जाबवर्क आदि)

शुद्ध, सुन्दर, सस्ता और शीघ्र

यथासमय तयार कर दिया जाता है

एक वार कृपाकर, कार्य भेज कर

परीक्षा कीजिये ।



निवेदकः —

अनन्तराम शर्मा

सद्धर्म्म प्रचारक ।

आर्य-भाषा का बहुत पुराना साप्ताहिक पत्र, जो २८ वर्षों से सहस्रों तक सच्चे धर्म का संदेश पहुँचाता रहा है। वार्षिक मूल्य ३), आर्य-भाषा (हिन्दी) के पत्रों में इसका स्थान बहुत ऊंचा है। पक्षपात रहित होकर धार्मिक, सामाजिक तथा शास्त्रीय विषयों पर विचार करना इसका उद्देश्य रहा है। शुद्ध धार्मिक राजनीति का मार्ग यह सदा आर्य पुरुषों को दिखलाता रहा है।

यदि मातृ भाषा की उन्नति करना चाहते हो तो इस साप्ताहिक पत्र के अवश्य ग्राहक बनिए।

प्रबंधकर्त्ता, सद्धर्म्म प्रचारक
गुरुकुल भूमि,
शामपुर-काङ्गड़ी, पोस्ट आफ़िस,
ज़िला बिजनौर U. P.

प्रचारक पुस्तक भण्डार ।

१. आर्य्य पथिक लेखराम .... मूल्य १)
२. संस्कृत साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन ,, ।=)
३. मृतक श्राद्ध पर विचार .... ,, =)॥

आर्य्य-धर्म्म ग्रन्थ-माला ।

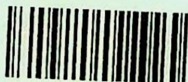
प्रथम गुच्छक—आर्यों की नित्यकर्म पद्धति .... -)
द्वितीय ,, पांच महायज्ञों की विधि .... -)
तृतीय ,, विस्तार पूर्वक सन्ध्या-विधि .... =)
चतुर्थ ,, आचाराऽनाचार और छूत छात .... =)
पंचम ,, ईसाई पक्षपात और आर्य्य-समाज .... -)
षष्ठ ,, वेद और आर्य्य-समाज .... -)
सप्तम ,, मातृभाषा का उद्धार .... -)

अन्य भाग तय्यार हो रहे हैं ।

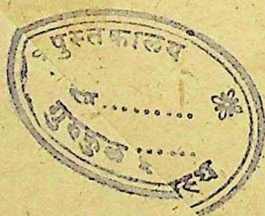
कमीशन का दर—२०) और उस से अधिक के खरीदार को १५) प्रतिशतक, ५०) और उससे अधिक के खरीदार को २०) प्रतिशतक और १००) और उस से अधिक के खरीदार को २५) प्रतिशतक कमीशन दिया जायगा ।

मिलने का पता :—

प्रबन्धकर्त्ता, प्रचारक पुस्तक-भण्डार,
P. O. शामपुर-काङ्गड़ी, ज़िला-बिजनौर (U.P.)


R15.2,JIG-A
28227




पुस्तकालय